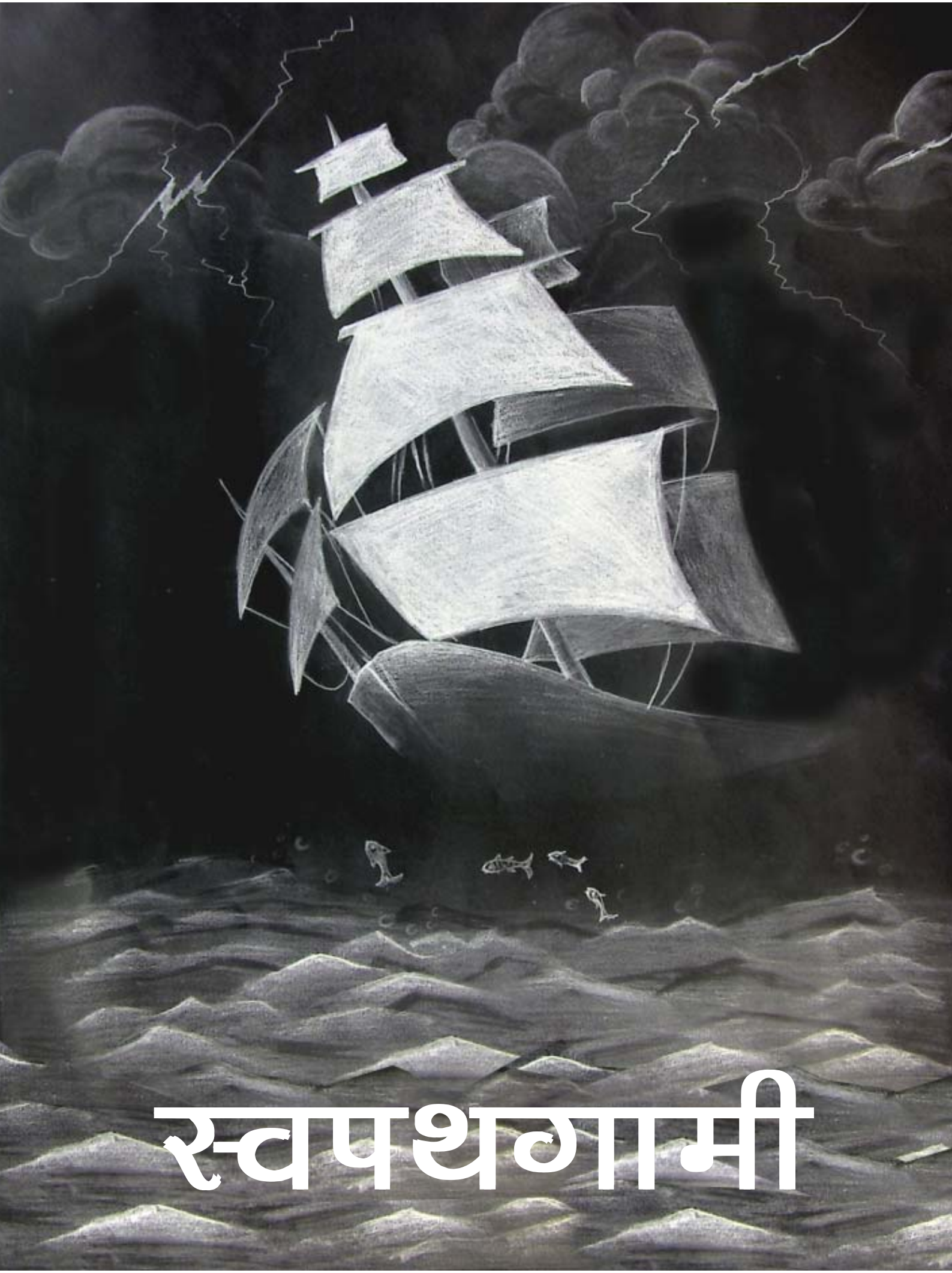

स्वपथगामी

फिल्म निर्माण कार्यशाला

फिल्म निर्माण से कहीं ज्यादा

कहने को तो मैं उदयपुर ''फिल्म निर्माण कार्यशाला'' के लिए गई थी, लेकिन सच पूछिए तो ना तो वो अनुभव केवल एक वर्कशॉप का था और ना ही मैंने वहॉ सिर्फ फिल्म मेकिंग सीखा। बल्कि, वो अनुभव वर्कशॉप कम और ''जीने का तरीका (way of life)'' ज्यादा था। ... और फिल्म मेकिंग के साथ–साथ मुझे तरह–तरह के सोच–विचार, विभिन्न कलाओं और अनेक प्रक्रियाओं में भाग लेने का मौका मिला। वाकई मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि ''फिल्म निर्माण कार्यशाला'' के दौरान हम एक गीत भी लिखेंगे, नुक्कड़ नाटक में भी भाग लेंगे और हर्बल साबुन, गहने एवं कागज के फर्नीचर बनाना भी सीखेंगे। ... और मज़े की बात यह है कि ये सब करके मैं अपने आपको ज्यादा समृद्ध महसूस करती हूँ, ना केवल एक इंसान के रूप में, बल्कि एक फिल्म मेकर के रूप में भी। कुल मिलाकर, केवल कैमरा और एडिटिंग की तकनीकियॉ सीखकर कोई फिल्म मेकर नहीं बन जाता; अलग प्रकार की सृजनात्मक प्रक्रियाओं को अनुभव करके उनको अपनाना किसी भी कलाकार के लिए महत्त्वपूर्ण है।

विभिन्न लर्निंग एक्सचेंज के साथ–साथ फिल्म निर्माण का कार्य भी चलता रहा। पहले दिन ही कैमरे का अपने हाथ से इस्तेमाल करके मुझमें आत्मविश्वास पैदा हुआ। मुझे मैगजीन्स से चित्र चुनकर, उनके आधार पर कहानी बनाकर उसको शूट करने में भी बहुत मज़ा आया। इस प्रक्रिया में सृजनशीलता और कल्पनाशीलता बहुत जरूरी थी, और यह करने पर एक पूर्ण फिल्म की सन्तुष्टि प्राप्त हुई। मेरे ख़्याल से सबसे बड़ी चुनौती थी – समूह के साथ '' हाउ टू?'' फिल्म बनाना। कारण यह कि औरों के साथ काम करना, खासकर जब उनकी सोच हमसे नहीं मिलती; आसान कार्य नहीं है। इसके बावजूद हम साथ मिलकर एक फिल्म बनाने में सफल रहे, इस बात से मुझे बहुत खुशी हुई।

मैंने फिल्म पर काम करते वक़्त बहुत कुछ सीखा, ना केवल लाइट, साउण्ड और एडिटिंग के बारे में, परन्तु टीम वर्क और रिश्तों के बारे में। हमारे ग्रुप ने मोची के काम पर फिल्म बनाई। मोची और उनके परिवार के साथ बातचीत करने पर मुझे अहसास हुआ कि उनको अपने काम के प्रति कितनी श्रद्धा है और वे कितने मज़े से, सन्तुष्ट होकर अपना जीवन जीते हैं। शायद इन दस दिनों में सबसे बड़ी सीख मेरे लिए यह रही कि हम जिनके बारे में भी फिल्म बनाते हैं, उनको समझना, उनका सम्मान करना, उनको प्रोत्साहित करना और उन्हें अपने पूर्व–निर्णित विचारों से नहीं प्रस्तुत करना। यह और जिन लोगों से मैं मिली, जो रिश्ते इस कार्यशाला के दौरान बने; उनको में अपने अनुभवों में से सबसे ज्यादा महत्त्व देती हूँ।

– वर्तिका पोद्दार, कलकत्ता <vertix@hotmail.com>

अनुभव और अभिव्यक्ति के बीच की दीवार

कलाकार वेन गो ने अपने भाई थीओ को एक चिट्ठी में लिखा था कि उस मजबूत दीवार को पार करना है जो मेरे अनुभव व मेरी अभिव्यक्ति के दरमियान खडी हैं। शायद हम सब भी अपने जीवन मे एक ऐसी दीवार को महसूस करते हैं। स्वपथगामी फिल्म कार्यशाला में हम सब इसलिये आए थे, क्योंकि उस दीवार को समझकर उसे पार करके कुछ नये रास्ते बना सकें। ऐसा करने के लिये हमने चित्रों व चलते–फिलते दृश्यों की भाषा जानने की कोशिश की।

सबसे बड़ी चुनौती तब महसूस हुई, जब हमें एक ही शॉट के माध्यम से स्वयं की एक अच्छाई को दर्शाना था। शॉट लेने में तो ज्यादा दिक्कत महसूस नहीं हुई, पर जब मैंने उस 10 सैकण्ड के शॉट पर बात करना शुरू किया, तो मुझे उसमें दस मिनट से भी कहीं ज्यादा समय लगा। तब मुझे महसूस हुआ कि मेरे खुद के अन्दर कितनी मोटी दीवार थी, जो मुझे शब्दों की भाषा के अलावा किसी और तरीके से अभिव्यक्त करने में बाधक बन रही थी।

तबसे मुझे महसूस होने लगा कि किसी भी चीज पर फिल्म बनाने से पहले मुझे खुद की कहानी, खुद की भावनाओं व अच्छाइयों को गहराई से समझने की आवश्यकता है। एक वर्कशॉप में फिल्म बनाना सीखना केवल मास कम्यूनिकेशन से कहीं ज्यादा स्वयं में विनम्रता, संवेदनशीलता व दूसरे की कहानी को कहने के लिए आदर की भावना पैदा करना था। चाहे वो कहानी किसी धोबी की हो, मेरी हो या किसी नदी की हो। इससे मुझे यह भी समझ में आया कि जैसे–जैसे मैं कोई नई फिल्म बना रही हूँ, वैसे–वैसे मेरे अन्दर कोई बदलाव व विकास होना आवश्यक है। मुझे यह भी लगा कि किसी

फिल्म को बनाने से पहले जिसके बारे में फिल्म बना रहे हैं, उससे सच्चा व गहरा रिश्ता बनाना आवश्यक है।

इस कार्यशाला में एक और रोचक बात यह थी कि इसमें कोई खास व्यक्ति सिखाने वाला नहीं था, बल्कि हम स्वयं ही सीखने वाले थे और हम ही को अपने सीखने की पूर्ण जिम्मेदारी लेनी थी और हमें स्वयं ही ऐसे मौके ढूँढ़ने की कोशिश करनी थी। आप किसी ऐसे जने की मदद ले सकते थे, जो आप ही की तरह के प्रश्नों से जूझ रहे थे।

कार्यशाला के दौरान हमने फतेहसागर में तैरना, रात में गरबा करना, पोलीथीन पर नाटक बनाना व सब्जी मण्डी में ग्राहकों से पोलीथीन को लेकर वाद–संवाद आदि भी किया। इन चीजों ने कार्यशाला में मिठास घोलने का काम किया। शायद मैं इस कार्यशाला में स्वयं की एक कहानी को लेकर गई थी, लेकिन जब वापस आई, तो मेरे पास मेरे ही बारे में कई अलग–अलग कहानियॉ थीं।

– सुखमणि कोहली, चण्डीगढ़
<bogused@gmail.com>

सत्य की जमीन पर आस्था के बीज

जब मैं अमेरिका में रहकर ''अन्तर्राष्ट्रीय विकास'' विषय में एम. ए. कर रही थी, तो हमारे कोर्स में वो ही सब जेंडर, गरीबी, स्वयं सहायता समूह, माइक्रो फाइनेंस, प्रोजेक्ट मैनेजमेंट, प्रोजेक्ट मोनिटरिंग, इवेल्यूएशन आदि का प्रपंच था। हमारी जो पाठ्यपुस्तकें थीं, वो भी सब यू. एन. (संयुक्त राष्ट्र संघ) की थी। सब कुछ बना–बनाया एक प्लान जैसा ढॉचागत सिस्टम था, जो विश्व बैंक और यू. एन. के द्वारा ही संचालित था। मुझे इस कोर्स में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन उस समय तक मेरे मन में विकास को लेकर कोई प्रश्न नहीं थे। मैं अर्थशास्त्र में पी. एच. डी. करना चाहती थी और उसके बाद विश्व बैंक में नौकरी करना चाहती थी। मैं सोचती थी कि अर्थशास्त्री बनने से मेरे हाथ में बहुत सारा पॉवर होगा और मैं बहुत कुछ 'सही' कर सकूँगी।

दुनिया में क्या असली समस्याएँ हैं? उन समस्याओं के सही हल के लिए क्या करना चाहिए? मेरे मन में बहुत सारे प्रश्न थे कि जो मुझे पढ़ाया जा रहा था, उसमें क्या गलत है, क्या सही है, उसका कैसे पता चल सकता है? लेकिन मैं महसूस करती थी कि इस व्यवस्था में जरूर कोई गड़बड़ है। तो मैंने तय किया कि मैं खुद जाकर अनुभव करूँगी। इसलिए मैं 2001 में 6 महीने के लिए भारत आई। मैंने अलग–अलग गॉवों में घूमना और लोगों से मिलना शुरू किया।

यहॉ आकर मैं अलग–अलग गॉवों में लोगों से मिलती गई, बहुत सारी जानकारियॉ लिखती गईं, सोचती गई। बड़े–बड़े एन. जी. ओ. ,विकास के काम से जुड़ी संस्थाएँ, छोटे–छोटे समूह जैसे शहडोल, कानपुर, गुजरात, कर्नाटक, केरल आदि में रेन वाटर हारवेस्टिंग का काम आदि के बारे में इतनी जानकारियॉ इकट्ठी हो गई कि अब एक दो साल उसे प्रोसेस करने की जरूरत थी। इस सारी प्रक्रिया में मैं कुछ खास सीख नहीं पाई थी, पर मेरे पास बहुत सारी सूचनाएँ थीं। मैंने महसूस किया कि जिस तरह से यूनिवर्सिटी में गॉवों की गरीबी और विकास के बारे में पढ़ाया जाता है, वो वास्तविकता से कितना अलग है!

जब मैं अपने इन सवालों से जूझ रही थी, उसी दौरान परिवार का दबाव था कि मुझे शादी करनी है। मैं बहुत असमंजस में थी। मुझे यही एक बहाना दिख रहा था कि मैं अभी पढ़ाई करूँगी, ताकि मैं फिलहाल शादी को टाल सकूँ और अपने लिए एक जगह खोज सकूँ। तो मैंने पी. एच. डी. करना शुरू कर दिया। लेकिन एक साल में ही मुझे लगने लग गया कि मैं अब और अमेरिका में नहीं रह सकती। मैं पी. एच. डी. छोड़कर भारत वापस आ गई।

यहॉ आकर मैंने एक संस्था के साथ ऑरगेनिक फार्मिंग पर 3 साल तक काम किया। 10 साल तक मैं अलग–अलग समूहों के साथ काम करती रही। लेकिन मेरा काम एक कॉर्डिनेटर का ही रहा। मेरी सोच इतनी सी थी कि मैं कैसे एक अच्छी ऑर्गेनाइजर बनूँ? कितनी तेजी से ज्यादा से ज्यादा लोगों को बदल डालूँ? हालॉकि मैं अपनी जीवन शैली के बारे में भी सोचती जरूर थी, लेकिन जब आपके पास एक कॉर्डिनेटर जैसी जिम्मेदारी होती है, तो खुद के जीवन पर ज्यादा ध्यान दे पाना मुश्किल होता है, आपको ज्यादा तेजी से काम करने वाली चीजों का इस्तेमाल करना पड़ेगा जो आपको फास्ट लाइफ जीने में मदद कर सके।

इन सारे लक्ष्यों तक पहुँचने और इस तनावपूर्ण काम का हरजाना मुझे अपनी बीमारी के रूप में भुगतना पड़ा। पिछले साल मैं बहुत बीमार हुई, मन से और शरीर से भी। कभी–कभी मेरा शरीर अचानक निष्क्रिय सा हो जाता है और मेरे पास उसका कोई

उपचार नहीं होता है। अभी तक मैंने कोई स्वास्थ्य जॉच भी नहीं करवाई है कि ऐसा क्यों होता है? मैंने सोचा कि जरूर मेरी जीवन शैली में कोई ख़ामियॉ रही होंगी। मैं महसूस करने लगी कि अगर मैं किसी काम को निरन्तर कुछ समय तक नहीं कर पाती, तो जरूर मेरे शरीर में कोई ना कोई गड़बड़ है। मैं अपने भीतर ही भीतर घायल सी महसूस करने लगी।

पिछले 3 महिने से मैंने यह समझना शुरू किया है कि आखिर मुझे अपने जीवन में क्या करना है, अपने सत्य को खोजने के लिए? मैंने अपने हाथों से अपने एक छोटे से जमीन के टुकड़े में काम करना शुरू किया। इसे मैं प्राकृतिक खेती कहूँगी, ना कि ऑर्गेनिक खेती। इसमें मैं किसी प्रक्रिया को नियन्त्रित नहीं कर रही हूँ, केवल एक फेसिलिटेटर की भूमिका निभा रही हूँ, जमीन में केवल कुछ बीज फैंकने का काम कर रही हूँ और शायद थोड़ा सा गोबर भी उसमें डाल देती हूँ। पहले यह जगह एक मलबे का ढेर थी। मैंने इस खेत में अलग–अलग क्यारियॉ नहीं बनाई हैं, बल्कि इसे एक जंगल की तरह पनपने के लिए छोड़ दिया है। प्राकृतिक रूप से जो भी हो रहा है, मैं उसे सिर्फ ध्यान से देख रही हूँ। मेरी इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है कि अपने मुनाफे के लिए पैदावार को कैसे बढ़ाया जा सकता है, बल्कि मैं तो यह देखना चाहती हूँ कि कुदरत मुझे कितना देना चाहती है? मैं ऑबजर्व करती हूँ जब खेत में कीड़े–मकोड़े आते हैं, वे क्यों आते हैं? अब मैं एक फॉर्म मैनेजर नहीं बनना चाहती, जिसकी पूरी दिनचर्या ही खेत को जोतना और उसकी निराई–गुड़ाई करना हो जाती है। इस प्रकार खेती का काम बड़ा मुश्किल काम लगने लग जाता है।

मुझे नेचुरल फार्मिंग वाले दो–तीन लोगों और उनके खेतों से बहुत प्रेरणा मिली है। उनमें से एक पी. वी. चन्द्रशेखर हैं, जो मैसूर में है। इनका खेत करीब 8–9 एकड़ में फैला हुआ है। इस खेत में लगभग 2500 प्रकार की वनस्पति है। इसमें कोई किसान न तो सिंचाई करता है और न ही किसी प्रकार की बुवाई–जुताई और न ही किसी तरह के कीटनाशक का छिड़काव किया जाता है। खेत में कुछ पेड़ है चिड़ियों के लिए और गिलहरियों के लिए। वे कहते हैं कि उन्हें सब कुछ खुद के लिए नहीं चाहिए। वे कहते हैं, ''आप कौन होते हैं यह कहने वाले कि मैं खेती करूँगा?! खेती तो एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें आपको भरोसा करने की जरूरत है।'' खेती की तरह ही हमारे जीवन की भी अपनी एक संरचना होती है, हीलिंग एवं स्वयं पोषित होने की क्षमता होती है। जैसे हम जब यह कहते हैं कि बच्चे को स्कूल भेजना ही चाहिए, क्योंकि उसका दिमाग खाली है, तो समझिए कि आप बिल्कुल ग़लत सोच रहे हैं। ठीक इसी तरह जमीन के बारे में भी अगर हम यह सोचते हैं कि यह बंजर और निर्जीव है और हमें ही इसमें कुछ डालना ही पड़ेगा, तो यह हमारी ग़लतफहमी है।

प्राकृतिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने से खेती का आनन्द चला जाता है। हॉ, अगर आप बंजर जमीन में पहली बार खेती की शुरूआत कर रहे हैं, तो आपको बहुत सारा काम करना पड़ सकता है, लेकिन कुछ समय बाद हमें यह भरोसा करना चाहिए कि जमीन खुद की देखभाल स्वयं कर सकती है। प्राकृतिक प्रक्रियाओं में दखलअन्दाजी करने से हमारा ज्ञान भी जड़ हो सकता है। क्योंकि हम शायद यह तो सीख सकते हैं कि एक टमाटर का पौधा कैसे उगाया जाता है, लेकिन हम यह नहीं समझ सकते कि कुदरत में ये कैसे पनपते हैं? अगर हम प्रकृति की स्वाभाविक क्रियाओं को नियन्त्रित करते रहेंगे, तो हमारी रोज नया सीखने की प्रक्रिया ही रुक जाएगी।

खेती की तरह ही अन्य चीजों का भी मूल दर्शन समान ही है। जैसे आजकल यह कहा जाता है कि लोग अपनी देखभाल खुद नहीं कर सकते हैं, इसलिए उन्हें सरकार की जरूरत पड़ती है। लेकिन प्राकृतिक खेती यह विश्वास दिलाती है कि सभी जीव एवं वनस्पति अपनी देखभाल खुद कर सकते हैं। हम अपने ही बारे में बहुत सारी विशेषताओं को भूलते जा रहे हैं, जैसे हमने प्रकृति से प्रेरणा लेना ही छोड़ दिया है। इसलिए कल को अगर सरकार नहीं होगी, तो बहुत सारी अव्यवस्था फैलने का डर होगा। लेकिन अगर हम उस प्राकृतिक प्रक्रिया में आस्था रखते हैं, तो हम आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

कभी–कभी मैं अपनी 10 साल पुरानी मानसिकता को बदलने में अभी भी कठिनाई महसूस करती हूँ, तो कभी–कभी मुझे लगता है कि मैं अपने पुराने पैटर्न से बाहर हूँ। मेरे माता–पिता प्राकृतिक चीजों तथा आयुर्वेद या किसी अन्य प्रकार के हीलिंग के तरीकों में विश्वास नहीं करते हैं। मुझे जब भी कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या होती है, वे मुझे केवल एलोपैथी जहर लेने की सलाह देते हैं, जबकि मैं उसका उपचार अपने तरीकों से करना चाहती हूँ। दूसरी तरफ मैं सोचती हूँ कि कुदरत ने हमें इतना कुछ दिया है कि मैं पूर्ण आत्मविश्वास के साथ केवल अपने खेत के भरोसे आत्मनिर्भर होकर जी सकती हूँ। लेकिन वहीं यह चुनौती है कि मैं अपने आपको बाहर की दुनिया से भी किस तरह जोड़े रखूँ?

मैं यह कामना नहीं करती हूँ कि बहुत सारे किसान प्राकृतिक खेती करने लग जाए, बल्कि मैं चाहती हूँ हम प्रकृति के साथ अपने जरूरी रिश्ते को पुनः पहचानें। मैंने खासकर अपने शहर में खान–पान के विषय में संवाद शुरू करना चाहती हूँ। अगर उनके पास छोटा जमीन का टुकड़ा है, तो मैं उनकी मदद कर सकती हूँ कि वे कैसे अपने खाने की चीजें खुद उगा सकते हैं। इसके साथ ही मैं बड़े स्तर के आन्दोलनों और अभियानों से भी जुड़ना चाहती हूँ। लेकिन मैं इन दोनों के बीच में सन्तुलन रखना चाहती हूँ। इसके अलावा मैं चैनई में एक ऐसी जगह भी बनाना चाहती हूँ जहॉ संवाद और विचारों के आदान–प्रदान हो सके, जहॉ लोग गहरे प्रश्न उठा सकें और उन पर अमल कर सकें।

– संगीता श्रीराम <.....@.....> पता एवं फोन.....
.....

जीवन साइकिल

जब मैं एम. ए. की परीक्षा देने वाला था, तब मुझे लगा कि परीक्षा के लिए पाठ्यक्रम की किताबों को मैं बार–बार क्यों पढ़ूँ? भारत विविधताओं का देश है, यह भी कई बार किताबों में तो पढ़ा था, लेकिन कभी अनुभव नहीं किया था और कभी यह समझ में नहीं आया था कि इसका क्या अर्थ होता है?

परीक्षा से कुछ दिन पहले ही पढ़ाई छोड़कर मैं इन प्रश्नों की खोज में 32 दिन की पैदल यात्रा की। इस दौरान मैं महाराष्ट्र के तथाकथित पिछड़े क्षेत्र गढ़चिरौली में गया। वहॉ मैंने ऐसे गॉव देखे, जहॉ लोग सामूहिक खेती करते हैं और बाहर से सिर्फ नमक खरीदकर लाते हैं। इतने कम संसाधनों में जीने और अपनी जरूरतें खुद पूरी करने वाले इन लोगों से मैं बहुत प्रभावित हुआ और यह प्रश्न पैदा हुआ कि इन्हें हम पिछड़ा क्यों मानते हैं? इस यात्रा के बाद मेरी इच्छा हुई कि मैं और भी गॉवों की यात्रा करूँ और कुछ समय जाकर रहूँ। पिछले साल ही मैंने साइकिल सीखी थी, जो मेरे काम आई। मैंने साइकिल उठाई और 15 दिन में लौटने का बोलकर घर से निकला।

मेलघाट, सेवाग्राम, बस्तर (छत्तीसगढ़), कालाहाण्डी, कन्धमाल, कोणार्क, मयूरभंज (उड़ीसा), जमशेदपुर, गुमला (झारखण्ड), अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़), अमरकंटक, कान्हा, बालाघाट (मध्यप्रदेश), अदिलाबाद (ऑध्रप्रदेश) ऐसे लगभग सभी आदिवासी क्षेत्र से होकर मैं घर पहुँचा था।

जमशेदपुर के आजू–बाजू के ध्वस्त गॉवों ने मुझे हिलाकर रख दिया। लोहा, बोक्साइड, मेग्नीज की खदानों के नाम पर खेती गई। लोहा रिफाइनरी जैसे उद्योगों से आमदनी तो हुई, लेकिन हड्डी–पसली एक करने वाली मजदूरी से और वो भी दस में से दो को। बाकी सब किसान से भिखारी हो गए, खदान के नाम पर चार–चार बार भगाए हुए या फिर कान्हा नेशनल पार्क में से उखाड़े गए लोग। मेरी वहॉ तीन–चार आदिवासियों से बातचीत हुई। उन्होंने मुझे पूछा कि हम यहॉ सालों से रह रहे हैं और फिर भी जंगल बचा हुआ है, वो कैसे? हमारे घर में कितने खिड़की–दरवाजे हैं, गिन लो! और आपके घर में कितने हैं? हम ही जंगल के रखवाले हैं, तो हमें ही जंगल बचाने के नाम पर यहॉ से क्यों उखाड़ा जा रहा है?

इस यात्रा में मुझे जल, जंगल, जमीन, शोषण, पर्यावरण आदि प्रश्नों को लेकर काम करने वाले साथी मिले, जो मेरी ज़िन्दगी की अमिट कमाई है।

एक दिन मेलघाट टाइगर रिजर्वड में मैंने शेर की दहाड़ सुनी और जंगली सूअर को भी देखा, लेकिन मुझे कोई डर नहीं लगा। इससे ज्यादा तो मुझे शहर में होते हुए डर लगता है कि कहीं मेरे घर में चोरी न हो जाए? यहॉ तक कि अपने बैग और पॉकेट के बारे में भी सतर्क रहना पड़ता है।

उड़ीसा के गॉवों में मैंने कई बार *पखाल भात* (उबला हुआ चावल, जिसे छाछ के साथ खाते हैं) खाया। आमतौर पर वे लोग *पखाल भात* को रात में बनाकर दूसरे दिन भी खाते हैं। मुझे लगता था कि इस तरह बासी खाना तो गरीब लोग ही खाते हैं, जो ठीक नहीं होता। इसलिए मुझे शुरूआत में तो झिझक हुई, लेकिन बाद में महसूस हुआ कि यहॉ के सभी लोग ऐसा करते हैं और मानते हैं कि बासी *पखाल भात* शरीर की ठण्डक और स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। मुझे लगा कि बासी खाना हमेशा खराब नहीं होता। अब मुझे यह भी लगता है कि जिस तरह हम लोग शहर में हर चीज को फ्रिज में डालकर लम्बे समय तक रखने के आदी हो गए हैं, वो हमारे लिए और प्रकृति के लिए भी हानिकारक है। हालॉकि मेरे घर में अन्य लोगों की मॉग के अनुसार फ्रिज रखा गया है, लेकिन मैं इस फ्रिज का इस्तेमाल नहीं करता हूँ और अब तो घर में बहुत ही कम उपयोग होता है।

मैं हरदम सोचता था – सौ में से अस्सी बेईमान। लेकिन कितना ग़लत था मैं! 15 दिन की यात्रा 146 दिन तक चली, वो गॉव वालों के दिए हुए प्यार, अप्रतिम सहयोग के कारण। कभी साइकिल का चिमटा टूटा, तो लोगों ने ही नया लगवाया। कुछ लोगों ने भाई बनाकर आर्थिक मदद भी की। जब ठण्ड बढ़ने लगी, तो नए कपड़े दिए। घर से मैं केवल 700 रुपये लेकर चला था। कुछ खर्चा 1500 रुपये के करीब हुआ होगा और घर पहुँचा, तो भी जेब में 700 रुपये बचे थे। मैंने *बिछोरा, लिटी, पखाल भात, माण्डला* जैसे कई नए व्यंजन पहली बार उसी क्षेत्र में चखे और बनाने सीखे।

मैंने पूरी यात्रा में कुल 65 भाषाऍं/बोलियॉ पहली बार सुनी, जिनमें से *हलबी, भत्री, राड़* जैसी बोलियों का तो कभी नाम भी नहीं सुना था। हर भाषा/बोली की अपनी सुन्दरता है, अपनी पहचान है और अभिव्यक्ति के अनूठे तरीके हैं। आज बताया जाता है कि भारत में कुल 18 प्रमाणित भाषाऍं हैं, जबकि न जाने कितनी भाषाऍं/बोलियॉ हमारे देश में हैं। मैंने देखा कि आज इन गॉवों में भी जो बच्चे स्कूल जा रहे हैं और जो युवा पढ़े–लिखे हैं, वे अपनी स्थानीय बोली को बोलने में शर्म महसूस करते हैं और उसे हीन भावना से देखते हैं। मुझे लगता है कि भाषा केवल अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारी अस्मिता का प्रश्न है। क्योंकि जब हम अपनी भाषा को खोते हैं और अंग्रेजी–हिन्दी जैसी पराई भाषा को अपनाते हैं, तो न केवल हम अपनी विविधता को खोते हैं, बल्कि उन पराई भाषाओं से आए तौर–तरीके (जैसे टाई–कोट, फ्रिज, टीवी) भी अपनाते हैं।

मैं सोचता हूँ कि किस तरह गॉवों में लोग अपनी सभी जरूरतों को खुद पूरा कर लेते हैं और वो भी सीमित संसाधनों में? घर बनाने से लेकर खाने–पीने की सभी चीजें वे खुद बना लेते हैं, तो मैं भी अपने जीवन को कैसे स्वावलम्बी बना सकता हूँ? इस यात्रा के बाद मैंने एक गॉव में बिना बिजली और आधुनिक टेक्नोलॉजी के खेती करते हुए आठ महीने बिताए हैं, जहॉ मैं केवल कपड़े और कुछ किताबें लेकर गया था। अब मैं प्रयास कर रहा हूँ कि सूत कताई के साथ ही कपड़ा बुनाई सीखूँ और स्वावलम्बन के प्रयोग करूँ।

– विनायक विजया विजय <knoleader@rediffmail.com>,

मैक्सिको यात्रा

अपने पारम्परिक ज्ञान और स्थानीय आर्थिक व्यवस्था में विश्वास के कारण मेरी विदेश–यात्राओं में कोई दिलचस्पी नहीं रही है। लेकिन जब मुझे यह बताया गया कि मैक्सिको में भी हमारे यहॉ की भॉति पारम्परिक ज्ञान का खजाना है और विशेषकर पारम्परिक चिकित्सा की कई अनूठी पद्धतियॉ आज भी प्रचलित हैं, तो मैं मैक्सिको यात्रा के लिए तैयार हुआ। लगभग डेढ़ महिने मैं वॉहाका शहर तथा उसके आसपास के गॉवों में रहा।

मेरी यात्रा की शुरूआत हुई *तोनान्तसिन त्लाली* (Mother Earth) से। यह एक ऐसी जगह है, जहॉ प्राकृतिक जीवन जीने के कई छोटे–छोटे प्रयोग हो रहे हैं। मैं पहले दिन से ही उत्साहित था कि मुझे किसी *कुरान्देरो/कुरान्देरा* (healer) से मिलने का मौका कब मिलेगा। जब मैंने इलियाना से इस बारे में पूछा तो वो बोली, ''इस कैम्पस के अन्दर एक हर्बल गार्डन है और इन सब पौधों के बारे में फेलिक्स जानकारी रखता है। लेकिन अगर तुम बाहर जंगली जड़ी–बूटियों के बारे में जानना चाहते हो, तो तुम्हें दोन तिनो से मिलना चाहिए।''

वहॉ के आसपास के जंगल में उपलब्ध लगभग सभी पेड़–पौधों के बारे में दोन तिनो बहुत ज्ञान रखते हैं। आधा किलोमीटर की दूरी में उन्होंने कोई पचास जड़ी–बूटियॉ ऐसी दिखाई, जो सामान्य तौर पर होने वाले लगभग सभी रोगों के इलाज के लिए पर्याप्त हैं। हालॉकि वहॉ उपलब्ध पौधों में से बहुत सारे पौधे हमारे यहॉ नहीं हैं, फिर भी कुछ ऐसे पौधों के बारे में जानकर ताज्जुब हुआ, जो भारत और मैक्सिको में समान रूप से देखे जाते हैं। जैसे – तुलसी का पौधा हमारे यहॉ भी पूजनीय है, तो मैक्सिको में भी लोग इसकी पूजा करते हैं और कई लोग इसे अपने घर में रखते हैं। ग्वारपाठा, तो मैंने कई दुकानों के सामने लगाया हुआ देखा, पूछा तो पता चला कि यह धन्धे में लाभ के लिए शुभ माना जाता है। दोन तिनो ने बताया कि प्रकृति में मौजूद सभी पेड़–पौधे उपयोगी होते हैं। मैं भी इस बात में थोड़ा विश्वास करता था, लेकिन लेण्टाना जैसे कुछ पौधों को तो मैं बेकार ही मानता रहा हूॅ। लेकिन दोन तिनो ने बताया कि *जापोत्यो* (लेण्टाना) भी दस्त रोकने के लिए बहुत फायदेमन्द है। बुगनविलिया (जो हमारे यहॉ केवल सजावटी बेल मानी जाती है) के फूल खॉसी के लिए उपयोगी है।

तोनान्तसिन त्लाली में दोन तिनो, पोंचो, एनी सहित हमने मिलकर गोबर, विभिन्न प्रकार की मिट्टी और कुछ हर्ब्स से साबुन बनाया। मैं यह साबुन पहले कई बार बना चुका था, जिनमें अकसर कुछ विशेष प्रकार की मिट्टी (मुल्तानी मिट्टी एवं सोना गेरु) का इस्तेमाल किया करता था। पोंचो (एक मैक्सिकन दोस्त) ने बताया कि क्यों नही हम कुछ अलग–अलग प्रकार की मिट्टी के साथ प्रयोग करें! भारत से मुल्तानी मिट्टी मैक्सिको ले जाकर साबुन बनाना, तो मूर्खता ही होती! तो हमने जंगल से विभिन्न प्रकार की मिट्टी इकट्ठी की और साबुन बनाने में उसका उपयोग किया।

''नहीं! वे लोग तुम्हें कभी नहीं बताऍगे अपने ज्ञान के बारे में। कुरान्देरो/कुरान्देरा (traditional healers) अपने ज्ञान को हमेशा गुप्त रखते हैं।'' जब मैंने वॉहाका शहर में कुछ और कुरान्देरा से मिलने की इच्छा जताई, तो एक दोस्त ने कहा था। सही तो है, पीढ़ियों से संचित अपने ज्ञान को वे भला मुझे क्यों बताऍगे? हम जैसे पढ़े–लिखे लोग और बड़ी कम्पनियॉ जब उनके ज्ञान का फायदा उठाकर उन्हीं का शोषण कर रहे हैं, तो वे क्यों बताऍगे? अब तक हजारों लोग दोन्या सोफिया के यहॉ आ चुके हैं और सभी कहते हैं – ''वॉव! आप तो बहुत अद्भुत काम कर रही हैं!'' लेकिन शायद ही किसी ने इस काम को गहराई से समझने और अपने जीवन में अपनाने की कोशिश की होगी।

दोन्या सोफिया एक कुरान्देरा (healer) है और विशेषकर दाई का काम करती है। उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण सवाल मुझसे पूछा कि भारत और मैक्सिको में उपलब्ध वनस्पति बहुत भिन्न है, तो फिर तुम यहॉ की जड़ी–बूटियों के बारे में जानकर क्या करोगे? दरअसल उनके यहॉ आने वाले कई लोग ऐसी जानकारियों को नोट–बुक में लिखकर ले जाते हैं, लेकिन पारम्परिक चिकित्सा के ज्ञान को गहराई से नहीं समझने के कारण वे या तो अपने जीवन में उसका कोई उपयोग ही नहीं कर पाते या फिर कोरी सूचनाओं को संकलित करके उसका व्यावसायिकरण करने में जुट जाते हैं। मुझे समझ आया कि मैक्सिकन जड़ी–बूटियों के बारे में जानकारियॉ एकत्रित करने के बजाय मुझे कुरान्देरोज के दर्शन, चिकित्सा के बारे में सोच, प्रकृति और समाज के साथ उनके रिश्ते के बारे में जानना चाहिए।

''घर–घर में कुरान्देरो और हर घर में पार्तेरा है! सामान्य बीमारियों का इलाज तो इस गॉव में सब लोग ही कर लेते थे। हम जैसे कुरान्देरो और पार्तेरा की जरूरत तो तब होती थी, जब कोई गम्भीर बीमारी हो जाए।'' मुझे बताया गया कि किस तरह मैक्सिको में भी पढ़े–लिखे लोगों की संख्या बढ़ने के साथ–साथ ही कुरान्देरो की संख्या कम होती जा रही है। मुझे यह और अधिक स्पष्ट हुआ कि किस प्रकार स्कूली व्यवस्था, दवा उद्योग और आर्थिक व्यवस्था गहराई से एक–दूसरे से जुड़े हुए है। क्योंकि लगभग तमाम स्कूलित लोग पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों कें विश्वास करने के बजाय आधुनिक एवं विदेशी दवा कम्पनियों में भरोसा करते हैं।

जब मैंने दोन्या सोफिया से स्वमूत्र चिकित्सा एवं गोबर के इस्तेमाल के बारे में बातचीत शुरू की, तो उसने बताया कि उनके वहॉ भी यूरिन थैरेपी का इस्तेमाल बहुत सारे रोगों को ठीक करने में किया जाता था और गोबर का इस्तेमाल शरीर की सफाई के लिए तथा डिसइन्फेक्टेंट के रूप में किया जाता था। पंचगव्य चिकित्सा (गाय के पॉच उत्पादों – गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घी) के बारे में मैं थोड़ा बहुत जानता हूँ, इसलिए हमने पंचगव्य चिकित्सा के बारे में भी थोड़ी बातचीत की।

'स्वस्थ' होने का क्या मतलब है? शारीरिक रूप से फिट होना? भोजन के बारे में सीखना बहुत महत्त्वपूर्ण है, अगर तुम स्वास्थ्य के बारे में सीखना चाहते हो तो। दोन्या सोफिया ने बताया कि जब 1910–20 में उत्तरी मैक्सिको के लोग दक्षिणी मैक्सिको में आए और यहॉ की सारी खाद्य–सामग्री लूटकर ले गए थे, तब यहॉ के लोग *नोपाल* (एक प्रकार का कैक्ट्स) को खाकर कई महीनों तक जिन्दा रहे थे। उन्होंने बताया कि आजकल स्कूली पीढ़ी के लोग इसे कैक्ट्स मानकर महत्त्वहीन समझते हैं। *नोपाल* की पौष्टिकता के बारे में हुई बातचीत से मुझे अहसास हुआ कि हमारे यहॉ राजस्थान में भी ऐसी घटनाएँ हुई हैं। मेवाड़ के महाराणा प्रताप जब मेवाड़ की आजादी के लिए जंगलों में रहे थे, तब वहॉ के भील जाति के लोगों ने उनको *हामो* नामक स्थानीय अनाज खिलाया था, जो बहुत ही पौष्टिक होता है, लेकिन आजकल *हामो* को केवल घास का नाम देकर नकार दिया जाता है। इन सबके पीछे शायद यही सोच रही होगी कि किस तरह से लोगों के स्थानीय खान–पान की चीजों को नष्ट कर दिया जाए, ताकि वे गेहूँ और चावल जैसे अनाज पर निर्भर हो जाएँ और वैश्विक बाजार की गुलामी स्वीकार कर सकें।

यहॉ रहते हुए मुझे दो प्रकार की पारम्परिक हीलिंग प्रक्रियाओं (*लिम्पिया* और *तेमास्काल*) से गुजरने का मौका मिला। उनमें से *तेमास्काल* में मुझे बहुत ऊर्जा एवं शुद्धि का अनुभव हुआ। *तेमास्काल* एक प्रकार का प्राकृतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सामुदायिक उत्सव है, जिसमें वे *हर्बल सोना* या *स्टीम बाथ* की तरह एक बन्द कोठरी में एक गड्ढे में गर्म पत्थरों पर पानी डालकर भाप पैदा करते हैं और 10–15 लोग उसके चारों तरफ गोल घेरे में बैठकर उस भाप से अपने शरीर, मन और आत्मा की शुद्धि का प्रयास करते हैं। सबके हाथों में कुछ अलग–अलग जड़ी–बूटियों का गुच्छा होता है, जिनको शरीर पर मलते हैं और झाड़ते हुए शरीर की सफाई करते हैं। जल, पृथ्वी, सूर्य, अग्नि और वायु को देवताओं के रूप में सम्बोधित करके हुए उनका शुक्रिया अदा करते हैं और स्वयं के साथ–साथ सम्पूर्ण समुदाय एवं प्रकृति की शुद्धि की कामना करते हैं। 3 घण्टे की इस पूरी प्रक्रिया में मुझे न केवल अपनी शुद्धता–स्वच्छता का अहसास हुआ, बल्कि खुद को अन्य लोगों और उस जमीन से जुड़ाव महसूस हुआ। परम्पराओं में आस्था रखने वाले लोग साल में दो–तीन बार *तेमास्काल* के लिए जरूर जाते हैं, यह उनकी जीवनशैली का ही एक हिस्सा है।

स्व–चिकित्सा की इस खोज यात्रा में मुझे स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवों के साथ–साथ वहॉ की अन्य परम्पराओं को भी महसूस करने का मौका मिला। हमारे यहॉ वस्तु–विनिमय की भॉति वहॉ भी *cambios* की परम्परा थी, जिसमें वे लोग मुद्रा से चीजें खरीदने–बेचने के बजाय अपने हाथों से बनी चीजों का लेन–देन किया करते थे (स्पेनिश और अमेरिकन लोगों के प्रभाव से यह परम्परा अब खत्म हो रही है)। मैंने भी यहॉ सीखने के लिए अधिकांशतः मुद्रा का इस्तेमाल नहीं किया, बल्कि उसके बदले में अलग–अलग चीजें (जैसे प्राकृतिक चीजों से बनाए गहने, रबर–ट्यूब से बने बैग, जड़ी–बूटियों से बनी दवाइयॉ, हर्बल साबुन, हर्बल तैल आदि) बनाने का हुनर बॉटने का प्रयास किया तथा कुछ मित्रों को ये चीजें बनाकर उपहार के रूप में भी दी। शायद इसी कारण मेरा लोगों से अच्छा रिश्ता भी बन पाया।

मैंने देखा है कि आजकल विदेश–यात्रा के नाम पर अधिकांश लोग अमेरिका या इंग्लैण्ड जैसे विकसित कहे जाने वाले देशों की तरफ ही भागते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि अगर हम अपने जीवन में अर्थपूर्ण सीखना चाहते हैं और नए विकल्प खोजना चाहते हैं, तो तथाकथित पिछड़े देशों में ही ऐसे मौके खोजे जा सकते हैं, जहॉ आज भी विविध संस्कृतियॉ, भाषाएँ, परम्पराएँ और विभिन्न जीवनशैलियॉ मौजूद हैं।

– रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>,
शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर, राज. फोन : 0294–2451303

फिल्म समीक्षा

लगे रहो मुन्नाभाई

यह फिल्म अन्य फिल्मों से कुछ हटकर थी। क्योंकि आजकल की फिल्मों में लगभग एक–सी कहानी होती है। लेकिन इस फिल्म में एक नया पात्र देखने को मिला – गॉधीजी का, जो मुझे बहुत प्रभावशाली लगा। इस फिल्म में गॉधीजी की दो–तीन बातों ने मुझे बहुत प्रभावित किया :–

– एक तो जब गॉधीजी कहते हैं कि मेरी सारी तस्वीरें दीवार से हटा दो, सारी मूर्तियॉ तोड़ दो; अगर मुझे कहीं रखना ही है, तो अपने दिल में रखो।

– जो बदलाव आप दुनिया में देखना चाहते हैं, उसकी शुरूआत खुद से करोगे तो सफलता जल्दी मिलेगी।

– कोई काम छोटे या बड़े नहीं होते हैं, लोगों के नजरिये अलग–अलग होते हैं देखने के।

लेकिन सब फिल्मों की तरह इस फिल्म में भी काफी ग्लैमर, चकाचौंध, पैसा ये सब देखने को मिला। लेकिन जितना मुझे गॉधीजी के बारे में मालूम है कि उन्होंने कभी भी ऐसे विनाशकारी विकास की कल्पना भी नहीं की होगी, जो आज हमारे सामने है। इस फिल्म के माध्यम से जो फिल्म–निर्माता ने बताना चाहा, वो बहुत सराहनीय है। इस फिल्म को देखकर मुझमें और मेरे बहुत युवा साथियों में भी काफी जोश आया। मैंने यह फिल्म देखने के बाद अपने जीवन के बारे में नई तरह से सोचने की शुरूआत की।

यह फिल्म एक नया प्रयोग है जिसमें गॉधीजी के विचारों को आधुनिक परिपेक्ष्य में नई पीढ़ी की रुचि के अनुसार दिखाया गया है। यह फिल्म देखने से पहले मैं सोचता था कि गॉधीजी के दो मूल सिद्धान्त थे – सत्य और अहिंसा, जिन पर वे हमेशा कायम रहे। वैसे तो सत्य को केवल झूठ नहीं बोलना व अहिंसा को किसी पर हाथ नहीं उठाना तक ही सीमित कर दिया गया है। मैंने इन दोनों पर काफी सोचने की कोशिश की है कि वास्तव में मेरे लिए इनका क्या मतलब है? मैं अब सोचता हूॅ कि मैं जो भी काम करता हूॅ, उसमें स्वयं में सुधार व बदलाव लाने की मानसिकता से करता हूॅ और साथ ही यह भी सोचता हूॅ कि आधुनिक शहरी जीवनशैली में अहिंसक जीवन जीना कैसे मुमकिन है? क्योंकि आज हर कदम पर विनाश हो रहा है प्रकृति का व लोगों के ज्ञान का। तो क्या यह अहिंसक जीवन जीने में हमें इन सब पर भी प्रश्न उठाने चाहिए? ये बड़ी–बड़ी इमारतें, फैक्ट्रियॉ, गाड़ियॉ ये सब हिंसा और झूॅठ को बढ़ाने का ही काम कर रही है। अगर इस फिल्म में इन चीजों पर भी कोई प्रश्न उठाया जाता, तो हम गॉधीजी व उनके विचारों को और गहराई से समझ पाते।

यह फिल्म देखने के बाद मुझे गॉधीजी के जीवन के बारे में जानने का एक और मिला – ''गॉधी कथा'' सुनने का। गॉधी कथा में मुझे विशेषकर जो बात अच्छी लगी कि कभी किसी पर अन्याय मत करो और कभी किसी का अन्याय मत सहो।

''मुझे रोगी को नहीं, रोग को मिटाना है'' इस वाक्य का मुझ पर सीधा असर हुआ। जब मैंने इस बात का विश्लेषण किया तो समझ में आया कि आज हमें इस व्यवस्था में शामिल लोगों पर प्रश्न उठाने के बजाय, इस व्यवस्था और विनाशकारी विकास की सोच पर ही प्रश्न उठाने की जरूरत है। हॉ, आज परिस्थितियॉ बदल गई है, इसलिए शायद गॉधीजी के सभी तरीके आज प्रासंगिक नहीं हो, लेकिन इस विचार को ध्यान में रखते हुए नए–नए तरीके खोजे जा सकते हैं।

गॉधीजी के स्वावलम्बी जीवन से मुझे बहुत प्रेरणा मिली। आज इस उपभोक्तावादी दुनिया में इसका नाम–मात्र का मतलब रह गया है। क्योंकि आज इस 'विकास' की दौड़ में लोग केवल उपभोग कर रहे हैं, सारी रेडिमेड चीजों का इस्तेमाल कर रहे हैं। मैं अपने जीवन में यह प्रयास कर रहा हूॅ कि बाजार पर अपनी निर्भरता को कैसे कम करूॅ? बनी–बनाई खाने की चीजों को छोड़कर मैं अपने हाथों से स्वास्थ्यपूर्ण एवं स्वादिष्ट भोजन बनाने के प्रयोग कर रहा हूॅ।

– मनोज प्रजापत <dhakkan59@yahoo.com>,
नीमचमाता स्कीम, देवाली, उदयपुर, राज.

गॉधी कथा

गॉधीजी की गोद में पले बुजुर्ग इंसान नारायण भाई ने जिस तरह गॉधीजी के बारे में छोटी–छोटी प्रेरणादायक घटनाएँ, उनसे मुझे लगा कि गॉधीजी भी एक साधारण इंसान थे। उनसे भी ग़लतियॉ होती थीं, पर वे अपनी ग़लतियों से सीखते थे और उनको दोहराते नहीं थे। इससे मुझे बहुत हिम्मत मिली कि मैं भी अपनी गलतियों को सच्चाई और माफी की नजर से देखूँ और अपने आपको बार–बार दोष देने के बजाय उनसे कुछ सीखूँ।

अहिंसा की शुरूआत दिल से होती है, किसी पाठ्यपुस्तक या कोई लेक्चर से नहीं। इसी प्रकार स्वराज की शुरूआत भी इससे होती है कि कैसे इंसान अपने सर्वांगीण जीवन की जिम्मेदारी खुद ले सकता है? कैसे वो समाज में प्यार के साथ, सृजनात्मकता के साथ आत्मनिर्भर होकर जी सकता है? मुझे महसूस हुआ कि स्वराज हर इंसान की मुक्ति के लिए कितना महत्वपूर्ण है? आज की दौड़ती–भागती दुनिया में हम इंस्टीट्यूशन्स, वैश्विक आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्थाओं के कितने गुलाम होते जा रहे हैं?

मुझे अहसास हुआ कि दूसरों से मेरी अपेक्षाएँ जितनी बढ़ती जाती है, मैं उतना ही अपने पॉवों पर खड़े होने की कोशिश को छोड़ती जाती हूँ, उतना ही कमजोर महसूस करती हूँ, गुस्सा और तनाव बढ़ता है, उतना ही शोषण होता है। मेरे मन में अब ये प्रश्न हैं कि क्यों हम अपनी–अपनी जिम्मेदारी खुद नहीं उठाते हैं? क्यों हम अपनी रुचि और हुनर को नजरअन्दाज करते हुए श्रम करना छोड़ देते हैं? मैं अपने दिल की राह ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रही हूँ, ताकि जीवन फिर से सुन्दर और सरल बन सके।

– उर्बि भादुड़ी, कलकत्ता <urbibhaduri@yahoo.com>

गॉधी कथा में जिस बात ने मेरे दिलो–दिमाग पर गहरा असर डाला, वो थी – गॉधीजी का पूँजीवादी व्यवस्था एवं उपभोगवादी मानसिकता का प्रतिरोध। आज विकास के नाम पर देश में जिस तरह विदेशी कम्पनियॉ सरकार के पूर्ण समर्थन से अपना प्रसार कर रही है, उससे समाज में उपभोग और असुरक्षा की भावना बढ़ रही है। मुझे अहसास हुआ कि मैं भी इस उपभोगवादी मानसिकता का शिकार रहा हूँ।

यह कथा सुनने के बाद मैं और मेरी पत्नी श्वेता धनतेरस पर किसी नई चीज की खरीद के लिए बाजार गए। धनतेरस के बारे में यह मान्यता है कि इस दिन घर में किसी न किसी प्रकार के धन का प्रवेश होना चाहिए (जो आजकल किसी न किसी बाजारी चीज की खरीद तक सीमित हो गया है)। हमने देखा कि बाजार में ऐसी कोई भी चीज नहीं थी, जो हमारे लिए बेहद जरूरी हो। हमें अहसास हुआ कि हम किन चीजों को धन मानकर अपने घर में इकट्ठा कर रहे हैं? वास्तव में हमें अपने जीवन में किस प्रकार के धन की जरूरत है?

श्री नारायणभाई देसाई (जो वेड़छी, सूरत में सम्पूर्ण क्रान्ति विद्यालय के साथ नई तालीम के प्रयोग कर रहे हैं) पिछले एक साल से देशभर में अलग-अलग जगह जाकर गॉधी कथा कर रहे हैं। यह कथा सात दिन की होती है, पर उदयपुर में इसका आयोजन तीन दिन (16,17,18 अक्टूबर) का हुआ। कुछ साथियों के अनुभव प्रस्तुत हैं।

गॉधीजी के अहिंसक और असहयोगात्मक प्रतिरोध में भी पहले मेरा विश्वास नहीं था, बल्कि मैं तो आजादी के लिए अपनाए गए हिंसक तरीकों को ज्यादा उचित मानता था। लेकिन दाण्डी यात्रा के बारे में सुनने के बाद मुझे लगा कि किस तरह गॉधीजी ने प्रतिरोध के लिए एक ऐसा विषय (नमक) चुना, जो हर इंसान से जुड़ा हुआ था। नमक कानून का प्रतिरोध करते हुए अपना नमक खुद बनाने के साथ ही गॉधीजी ने पूरे देश में एक बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया था। इस घटना से प्रेरणा लेकर मैंने सोचा कि मैं अपने जीवन में कौनसी चीजों का प्रतिरोध कर सकता हूँ? मैंने तय किया है कि मैं प्लास्टिक से बनी और प्लास्टिक में पैक की गई चीजों का इस्तेमाल यथासम्भव नहीं करूँगा।

– अमित कुमार, उदयपुर <lakecity_prince@yahoo.com>

गॉधीजी के बारे में मुझे पहले कोई खास जानकारी नहीं थी। मुझे केवल यह जानता था कि गॉधीजी ने देश की आजादी के लिए आन्दोलन किया था। लेकिन गॉधी कथा सुनने से पता चला कि जिसको हम आज आजादी समझ रहे हैं, गॉधीजी उसके पक्ष में नहीं थे, वे तो आजादी से भी आगे 'स्वराज' की बात करते थे। 'स्वराज' के बारे में उन्होंने बताया था कि गोरे लोगों को देश से निकालकर उनकी जगह उसी व्यवस्था में अपने देश के लोगों को राज करने के लिए बिठा देना स्वराज नहीं है, दूसरे लोगों एवं प्रकृति का शोषण किए बिना और खुद शोषित हुए बिना अपने जीवन को जिम्मेदारीपूर्वक जीना स्वराज है।

इसके बाद मैंने सोचना शुरू किया है कि मेरे जीवन में स्वराज कहॉ है? ऐसे कौनसे काम हो सकते हैं, जिनसे मैं अपना स्वराज पाने की कोशिश कर सकूँ। अब मुझे लगता है कि मेरे पारम्परिक काम (मिट्टी के बर्तन बनाना) में भी स्वराज था। क्योंकि इस काम में हम ना तो कोई चीज बाहर से खरीदकर लानी पड़ती थी और ना ही बनी हुई चीजें बाहर भेजनी पड़ती थी। ना तो हम किसी का शोषण करते थे और ना ही हमारा शोषण होता था। ना तो इसमें सरकार की दखलअंदाजी होती थी और ना ही किसी कम्पनी का हस्तक्षेप।

मैं कोशिश कर रहा हूँ कि कैसे अपने कुम्भकारी के काम को हुनर के रूप में अपनाऊँ और उसमें नए–नए प्रयोग करते हुए सृजनशील बनकर जीऊँ?

– निर्मल प्रजापत, उदयपुर <dhakkan59@yahoo.com>

दो पंछी

– रविन्द्रनाथ टेगौर

सोने के पिंजरे में था पिंजरे का पंछी,
और वन का पंछी था वन में!
जाने कैसे एक बार दोनों का मिलन हो गया,
कौन जाने विधाता के मन में क्या था!
वन के पंछी ने कहा, 'भाई पिंजरे के पंछी,
हम दोनों मिलकर वन में चलें।'
पिंजरे का पंछी बोला, 'भाई वनपाखी,
आओ हम आराम से पिंजरे में रहें।'
वन के पंछी ने कहा,
'नहीं मैं अपने–आपको बँधने नहीं दूँगा।'
पिंजरे के पंछी ने पूछा,
'मगर मैं बाहर कैसे निकलूँ!'

बाहर बैठा–बैठा वन का पंछी वन के तमाम गीत गा रहा है,
और पिंजरे का पंछी अपनी रटी–रटायी बातें दोहरा रहा है,
एक की भाषा का दूसरे की भाषा से मेल नहीं।
वन का पंछी कहता है,
'भाई पिंजरे के पंछी, तनिक वन का गान तो गाओ।'
पिंजरे का पंछी कहता है,
'तुम पिंजरे का संगीत सीख लो।'
वन का पंछी कहता है,
'ना, मैं सिखाए–पढ़ाए गीत नहीं गाना चाहता।'
पिंजरे का पंछी कहता है,
'भला मैं जंगली गीत कैसे गा सकता हूँ!'

वन का पंछी कहता है,
'आकाश गहरा नीला है,
उसमें कोई बाधा नहीं है।'
पिंजरे का पंछी कहता है,
'पिंजरे की परिपाटी
कैसी घिरी हुई चारों तरफ से!'
वन का पंछी कहता है,
'अपने–आपको
कर दो बादलों के हवाले।'
पिंजरे का पंछी कहता है,
'सीमित करो, अपने को सुख से भरे एकान्त में।'
वन का पंछी कहता है,
'नहीं, मैं वहाँ उड़ूँगा कैसे!'
पिंजरे का पंछी कहता है,
'हाय, बादलों में बैठने का ठौर कहाँ है!'

इस तरह दोनों एक–दूसरे को चाहते हैं,
किन्तु पास–पास नहीं आ पाते।
पिंजरे की तीलियों में से
एक–दूसरे की चोंच छू–छूकर रह जाते हैं,
चुपचाप एक–दूसरे को टुकुर–टुकुर देखते हैं।
एक–दूसरे को समझते नहीं हैं
न अपने मन की बात समझा पाते हैं
दोनों अलग–अलग डैने फड़फड़ाते हैं
कातर होकर कहते हैं, 'पास आओ।'
वन का पंछी कहता है,
'नहीं, कौन जाने कब
पिंजरे की खिड़की बन्द कर दी जाए।'
पिंजरे का पंछी कहता है,
'हाय, मुझमें उड़ने की शक्ति नहीं है।'

परिन्दों की भाषा, जीवन की आशा

बर्ड वॉचिंग में मेरी रुचि तो बचपन से ही थी, लेकिन इसकी और ज्यादा रुझान तब हुआ, जब मैं 1994 में 'राष्ट्रीय पर्यावरण जागरुकता अभियान' के एक कार्यक्रम के तहत् भरतपुर गया। वहॉ मैंने देखा कि कई लोग बर्ड–वॉचिंग को एक व्यवस्थित काम के रूप में अपनाए हुए हैं। उनमें से ज्यादातर लोग विदेशी थे। तो मैंने निश्चय किया कि हमारे देश के संसाधनों और जीव–जन्तुओं के बारे में जानने के लिए मुझे भी इसे अपने जीवन के हिस्से के रूप में अपनाना चाहिए।

उदयपुर आते ही मैंने सबसे पहले एक दूरबीन और एक किताब खरीदी। धीरे–धीरे मेरी रुचि बढ़ती गई। आज मैं हमारे यहॉ के तमाम पक्षियों को पहचान सकता हूँ और यह भी बता सकता हूँ कि वे किस वातावरण में रहते हैं? किस प्रकार की वनस्पति में पलते हैं? किस प्रकार अपना घोंसला बनाते हैं? इसके अलावा मैंने उदयपुर के प्रसिद्ध बर्ड–वॉचर रजादे सिंह जी और डॉ. सतीश शर्मा से भी मिला, जिन्होंने पक्षियों के बारे में कई पुस्तकें लिखी हैं।

सबसे ज्यादा मुझे सीखने को मिला, ग्रामीण क्षेत्र से सम्पर्क की वजह से। क्योंकि वहॉ जंगल भी हैं, खेत भी हैं, नदी–नाले भी हैं, एक अलग प्रकार का जीवन है, जहॉ कई प्रकार के पक्षी देखने को मिलते हैं। ऐसे माहौल में रहते हुए मुझे समझ आया कि किस तरह पक्षियों का प्रकृति के साथ रिश्ता है और हमारे जीवन में भी इनका क्या योगदान है? जैसे कई पक्षी हैं, जो कीटों को खा जाते हैं, इसलिए कीट–नियन्त्रण में उनका योगदान है। कई पक्षी बीजों के संवर्द्धन में बहुत योगदान देते हैं। हर पक्षी कुछ ना कुछ जाहिर करने की कोशिश करता है। हम देखेंगे कि जहॉ पेड़–पौधे कम हैं, वहॉ कुछ विशेष प्रजातियों के पक्षी नजर आएँगे, जैसे घरेलू गौरैया है, कौआ है। लेकिन जैसे–जैसे वनस्पति बढ़ती जाएगी, तो बुलबुल नजर आएगी, मैना नजर आएगी। फिर और हम जंगल की तरफ जाएँगे, तो और कई विभिन्न प्रजातियों के पक्षी नजर आएँगे, जैसे – कोतवाल चिड़िया, कमेड़ी, कठफोड़वा आदि। तो ये सब पक्षी जाहिर करते हैं कि आपकी वनस्पति की स्थिति या प्राकृतिक स्थिति कैसी है?

बर्ड वॉचिंग से सबसे बड़ा लाभ मुझे यह हुआ है कि आज जिस तरह की जीवनशैली का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, उतना ही तनाव भी हमारे जीवन में बढ़ता जा रहा है, तो बर्ड वॉचिंग के जरिये मुझे इस तनाव को कम करने का अवसर मिलता है। दूसरा लाभ मुझे यह हुआ है कि मुझे कभी भी बोरियत या समय नहीं कटने की समस्या नहीं होती।

मुझे लगता है कि प्रकृति में अपार सम्भावनाएँ हैं सीखने की, खोज करने की। बर्ड वॉचिंग को मैंने एक शौक के तौर पर शुरू किया था, लेकिन आज मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

लगभग 6 साल पहले की बात है, एक दिन जब मैं दूधतलाई (एक झील) के इधर गया, तो मैंने एक पक्षी की आवाज सुनी, जिसे मैं पहचान नहीं पाया। उसकी आवाज में गाने और सीटी का मिश्रण था। बर्ड वॉचिंग में पक्षी को देखने के साथ–साथ उसकी आवाज को सुनकर पहचानना भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। वहीं पास में एक गॉव का आदमी खड़ा था, तो मैंने उससे पूछा कि यह कौनसा पक्षी है? उसने बताया कि यह पपीहा है और इसकी जितनी लम्बी पूँछ होती है, उतनी ही अच्छी बारिश होती है।

उस दिन मुझे महसूस हुआ कि उस आदमी ने तो कभी मेरी तरह बर्ड वॉचिंग नहीं की, लेकिन उसको पक्षियों के बारे में बहुत जानकारी थी। उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ और उसके बाद से मैंने गॉव के लोगों से सीखना शुरू किया। मुझे लगता है कि स्थानीय लोगों का जो ज्ञान है, उसको आत्मसात् करना बहुत जरूरी है। क्योंकि वे न केवल पक्षियों का नाम जानते हैं, बल्कि उनके स्थानीय महत्त्व के बारे में भी ज्ञान रखते हैं। पक्षियों को लेकर लोगों में कई मान्यताएँ हैं, परम्पराएँ हैं। जैसे पीलक नाम का एक पीले रंग का पक्षी होता है, जिसका बहुत अच्छा शकुन माना जाता है।

जो लोग प्रकृति और प्राकृतिक जीवन से लगाव रखते हैं और पक्षियों के जीवन के बारे में जिज्ञासा और रुचि रखते हैं, वे इसे आसानी से सीख सकते हैं। इसके लिए आप बहुत सारी चीजें अपने स्तर पर कर सकते हैं। जैसे जब भी आप खेत, बगीचे या जंगल में जाएँ, तो इन पक्षियों की अलग–अलग क्रीड़ाओं को ध्यान से देखें। देखें कि वे कैसे उछलते हैं, कूदते हैं, उड़ते हैं? किस प्रकार के पेड़ों या झाड़ियों पर बैठते हैं? कैसी आवाजें निकालते हैं? जितना ज्यादा समय आप खुद जंगलों में जाकर देखने–सुनने में बिताएँगे, उतना ही आप अधिक गहरा अनुभव कर पाएँगे। हर व्यक्ति का चीजों को देखने का अपना एक नजरिया होता है। इसलिए हर व्यक्ति का अनुभव भी अलग होगा। इसके अलावा आपके कोई सवाल हैं, तो उसके लिए बहुत किताबें उपलब्ध हैं, जिनकी मदद ली जा सकती है। आजकल तो डिजिटल कैमरे भी उपलब्ध हैं, जिनसे आप फोटोग्राफ्स का संकलन कर सकते हैं और फिर गहराई से अध्ययन कर सकते हैं।

– शैलेन्द्र तिवारी <nrd@sevamandir.org>, रामेश्वरम्, शान्ति निकेतन कॉलोनी, अरिहन्त अपार्टमेंट के सामने, बेदला–बड़गॉव लिंक रोड़, उदयपुर, राज. फोन : 0294–2453421

कबाड़ से जुगाड़

हमारी संस्कृति में 'वेस्ट' (बेकार) नाम की कोई चीज नहीं होती थी। हर तरह की चीज पुरानी होने पर उसका पुनः इस्तेमाल किया जाता था या फिर उससे किसी न किसी तरह का जुगाड़ किया जाता था। लेकिन आज जिस तरह से हम कचरा बढ़ाते जा रहे है (विशेषकर शहरों में), वो सब अन्ततः कहॉ जाता है? उस कचरे से धरती पर कितना खतरा पैदा हो रहा है?

अपने घर, संस्था, मोहल्ले, गॉव या शहर को कबाड़–मुक्त बनाने और पैदा हुए कबाड़ से जुगाड़ करके सृजनात्मक चीजें बनाने के लिए जनवरी के अन्तिम सप्ताह में चण्डीगढ़ के रॉक गार्डन में जुगाड़ियों की मुलाकात हो रही है। इस जुगाड़ी–मुलाकात में हम प्रयास करेंगे कि :– .....नेकचन्द के बारे में .....

– अपने घर के कबाड़ से क्या–क्या उपयोगी चीजें बनाई जा सकती है?
– अपने घर, संस्था, मोहल्ले या आसपास के क्षेत्र को कैसे कचरा–मुक्त क्षेत्र बनाएँ?
– अपने आसपास ऐसे जुगाड़ियों को पहचानें और प्रोत्साहित करें, जो कचरे से स जनात्मक एवं उपयोगी चीजें बनाएँ।
– शहरी जीवन में कचरा–पात्र की संस्कृति को खत्म करने की कोशिश; जो मोहल्ले को तो साफ करती है, लेकिन पूरे शहर और शहरवासियों की बेवकूफी का मलबा गॉवों में फैलाती है।

कबाड़ से जुगाड़ में दिलचस्पी रखने वाले स्वपथगामी इस कार्यशाला में आमन्त्रित हैं। सम्पर्क करें :–

सुखमणि कोहली <bogused@gmail.com>
विशाल सिंह <aachi8@rediffmail.com>
फोन : 0294–2451303

आगामी कार्यक्रम

ग़र दिलचस्पी है...

क्या आपकी दिलचस्पी है प्रकृति को जानने में? प्राकृतिक खेती में? या फिर प्राकृतिक चिकित्सा में? देशी जड़ी–बूटियों में या उनसे बनी दवाइयों में? अगर आप इस आधुनिक जीवनशैली से हटकर स्वयं को प्राकृतिक चीजों से जोड़ना चाहते हैं और अपने खान–पान एवं स्वास्थ्य को लेकर अपने जीवन में कुछ नया करना चाहते हैं, हम प्राकृतिक खेती/देशी खेती या जड़ी–बूटियों की चिकित्सा पर कार्यशाला आयोजित कर सकते हैं। खेती या हर्बल चिकित्सा में से कौनसी चीज में आपकी रुचि है, यथाशीघ्र सूचित करें :–

शिल्पा जैन <shilpa@swaraj.org> फोन

सरगम समागम

संगीत के नाम पर हमारा सुर–संसार आजकल बॉलीवुड की सीमाओं में सिमट कर रह गया है और हमारे विभिन्न पारम्परिक संगीत भी पॉप म्यूजिक की चकाचौंध में कहीं खो गए हैं। ऐसी स्थिति में हम अपने भीतर के संगीतकार को कैसे पहचानें और नए संगीत का सृजन कैसे करें? फरवरी माह में हम दिल्ली में चार दिवसीय स्वपथगामी संगीत–उत्सव का आयोजन कर रहे हैं।

जो साथी अपने गीत–संगीत के सृजन और वाद्ययन्त्र बनाने एवं बजाने में रुचि रखते हैं, उनका इस उत्सव में स्वागत है। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–

रवि गुलाटी <ravigul@gmail.com> फोन :
चन्द्रेश <creativesumi@gmail.com> फोन :

आत्मकथ्य

स्वपथगामियों द्वारा शुरू की गई यह पत्रिका विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद स्थापित करने की कोशिश है, जिसके माध्यम से हम अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं।पत्रिका में जिन नए अवसरों का उल्लेख किया गया है और जिन लोगों के लेख प्रकाशित किए गए हैं, आप उनके बारे में विस्तृत जानकारी के लिए उनसे सीधा सम्पर्क कर सकते हैं। अपने स्तर पर उनके साथ मिलकर सीख सकते हैं। हम उन सभी लोगों को आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए–नए प्रयोग कर रहे हैं और साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। हम उन लोगों को भी आमन्त्रित करते हैं, जो इस पत्रिका के सम्पादन में सहयोग करना चाहते हैं। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–

रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>
मनोज प्रजापत <dhakkan59@yahoo.com>
c/o शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 (राजस्थान)
फोन : 0294–2451303

विशेष आभार :–
मुख्य पृष्ठ चित्र :